International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(2): 175-178

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(2): 175-178
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 28-12-2022
Accepted: 30-01-2023

डॉ. भावना आचार्य
सह-आचार्य, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

सूर्यबाला चौबीसा
शोधार्थी, संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. भावना आचार्य
सह-आचार्य, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

स्मृति साहित्य में संस्कृति और समाज

डॉ. भावना आचार्य, सूर्यबाला चौबीसा

प्रस्तावना

'संस्कृति' मानव समाज द्वारा अपने विकासकाल से अब तक जो समस्त आचार व्यवहार ग्रहण किया है । उसकी ही समष्टि है । वस्तुत: संस्कृति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने विविध विषयों एवं तत्त्वों के आधार पर अपने विचार व्यक्त किये मानव-विज्ञान एवं समाज-विज्ञान के अनुसार 'मानव-समाज द्वारा समस्त सीखा गया व्यवहार' ही संस्कृति है । इसका अभिप्राय यही है कि आदिम मानव से लेकर आज तक मानव ने रहन-सहन, आचार-व्यवहार, धर्म-अध्यात्म आदि से सम्बन्धित जिन मान्यताओं को परम्परा रूप में अर्जित एवं प्रचारित किया है । वे ही संस्कृति के मूल उपादान अथवा तत्त्व है । ये उपादान परम्परा रूप में अविच्छिन्न चलते रहते हैं तथा आदर्शों की प्रतिष्ठा करते रहते हैं। इसी विशेषता के कारण संस्कृति को ऐसा सनातन तत्त्व माना गया है, जो व्यक्तिनिष्ठ न होकर समाजनिष्ठ बौद्धिकता का परिचायक है । इस तरह संस्कृति किसी देश के जातीय जीवन द्वारा सदियों से किये गये आचारात्मक कार्यकलापों का परिणाम है । किसी जाति अथवा समाज के महापुरुषों के विचार, कार्य, वचन, व्यवहार, आदर्श एवं उनके द्वारा स्थापित परम्पराएँ ही निरन्तर प्रचलित रहने से उस जाति अथवा समाज की संस्कृति का निर्माण करती है ।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से बना है, इसमें 'सम्' सम्यग तथा 'कृति' शब्द चेष्टाओं या कार्यकलापों का वाचक है । इस व्युत्पत्ति के आधार पर संस्कृति का आशय उन विशिष्ट कार्यकलापों एवं सनातन उपलब्धियों से है । जो मानव-समाज द्वारा युगों से आदर्श रूप में अपनाये जा रहे हैं । श्रुति, स्मृति, पुराण आदि हमारी उत्तम या सर्वोच्च कृत्तियाँ है । उनके निर्देश एवं विधान ही सम्यग् चेष्टाएँ है । संस्कृति इन्हीं चेष्टाओं का आगर है ।" इस प्रकार साहित्य की समस्त विधाओं, कला-कौशल ज्ञान-विज्ञान आदि में शुद्धाचार मूलक भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति होने से ये सब संस्कृति के अंग है ।

भारतीय संस्कृति मानव के लिए सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज की अपेक्षा प्रतिपादित करती है । उसने समाज को सुसंगठित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । सांस्कृतिक दृष्टि से पूरे भारत राष्ट्र की आत्मा एक है तथा इसमें जहाँ राष्ट्रीय एकता को बल मिला है । वही सामाजिक एकता की स्थिति रही है । सामाजिक भावना की प्रबलता भारतीय संस्कृति के प्रणेताओं के लिए "वसुधैव कुटुम्बकम्" के रूप में एक शाशवत सिद्धान्त बन गयी है। "कृण्वन्तों विश्वमार्यम्" का उद्घोष सम्पूर्ण विश्व को एक सामाजिक ढाँचे में ढालने के महान् प्रसन्न का सूचक है ।[1]

समाज को सभ्य बनाने में भी संस्कृति का पर्याप्त योगदान रहा है । वर्णव्यवस्था सम्बन्धी नियमों की भाँति ही आश्रम व्यवस्था-सम्बन्धी नियम भी भारतीय सामाजिक जीवन के लिए उतने ही आवश्यक समझे जाते थे। समाज में जीवन को मर्यादित बनाये हेतु भारतीय संस्कृति ने सदाचार के नियमों, व्यवहारों एवं मर्यादा के उल्लंघन पर दण्ड़-विधान आदि के माध्यम से भारतीय समाज को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया ।

भारतीय संस्कृति में ज्ञान की प्रधानता स्वीकार की गयी है । विज्ञान भी ज्ञान का साधक है । अत: ज्ञान-विज्ञान भी धर्म के क्षेत्राधिकार में समाविष्ट प्रतीत होते हैं । श्रुति व स्मृति ज्ञान के आधार थे, तो सदाचार स्वरूप है । भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि उसने इन सबको धर्म का अंग बना दिया । मनु लिखते हैं-

"*श्रुति: स्मृति: सदाचार: स्वस्थ च प्रियमात्मन:।*
एतच्चतुर्विध प्राहु: साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।।"[2]

धर्म का प्रथम आधार श्रुति है । अत: भारतीय संस्कृति में श्रुति को भी परम प्रमाण माना गया है । श्रुति से अविरूद्ध कर रही स्मृति को भी प्रमाण कहा गया है । सदाचार के अन्तर्गत कई कर्त्तव्यों को जोड़ दिया गया है। भारतीय संस्कृति व्यावहारिक आचार की शिक्षा को प्रमुखता देती है । शिष्ट कार्यों का अनुष्ठान ही आचार कहा जाता है । "आचार: परमो धर्म:" कह कर भारतीय संस्कृति ने आचरण को ही धर्म का उज्ज्वल एवं सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रतिपादित किया है । आचरण से हीन होने पर तो देवता भी पवित्र नहीं माने जाते है, अत: कहा है- 'आचारहीन न पुनन्ति देवा:। आचार एवं व्यवहार को भारतीय संस्कृति में वंशानुगत परम्परा के रूप में प्रतिपादित कर दिया है । पिता, पितामह, प्रपितामह आदि पूर्वजों ने जिस सन्मार्ग का आचरण किया है । वहीं सन्मार्ग श्रेष्ठ है । इस विषय में किसी स्मृतिकार का वचन है ।

"*येनास्य पितरो याता येन याता पितामहा:।*
येन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न पुष्यति।।"

स्पष्ट है कि पारम्परिक सन्मार्ग पर चलने वाला दोष का भागी नहीं होता । व्यावहारिक दृष्टि से आचार के इस स्वरूप को सद्‌चार कह कर प्रतिष्ठापित किया गया है । याज्ञवल्क्य ने देश व कुल के अनुसार मर्यादाओं के अनुरूप आचार की बात कही है-

"*यास्मिन् देशे तु आचारो व्यवहार: कुल स्थिति:।*
तथैव परिपाल्यो सौ यदा वशंमुपागत।।"[3]

मनु ने व्यवहारिक दृष्टि से आचार की महत्ता बतलाये हुए आचार से आयु, सन्तान व धन की प्राप्ति की बात कहीं हैं। साथ ही उसे दोषों का निवारक भी माना है । मनु का वचन है-

"*आचाराल्लभते ह्यायुराचारा दीप्सिता: प्रजा:।*
आचाराद्धनमक्षरयामाचारो हन्त्यलक्षणम् ।।
सर्वलक्षणहीनो पि य: सदाचारवान्नर:।
श्रृद्दधानो नसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ।।[4]

स्मृतिकालीन समाज संस्कार युक्त था । उनमें दयाभाव आदर, विश्वास तथा सम्मान आदि की भावना विद्यमान

1. भारतीय संस्कृति
2. मनुस्मृति 2/12
3. या. स्म्. 1/346
4. मनुस्मृति 4/146/148

थी । मनु ने उक्त श्लोक द्वारा दयाभाव समाज को बताते हुए कहा है-

"*शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।*
*वायसानां कृमीणां च शनकै निर्वपकद् भुवि।।*12 *//* [5]

मनु ने बताया है कि अन्न का कुछ भाग एक पात्र से दूसरे पात्र में निकालकर सुरक्षित रखना चाहिए और वह भाग कुत्तों, पतितो, चाण्डालों, गलित कुष्ठ, क्षयरोग आदि रोगग्रस्तों, कौवों, कीट-पतंगों को खिलाना चाहिये । वह अन्न रोगियों के हाथ में नहीं देना चाहिये, अपितु उनके पात्र में देना चाहिए । कुत्तों आदि को जो अन्न भाग रखना चाहिये, वह इस तरह जमीन पर रखना चाहिये जिससे उसमें धूल न लगे । जहाँ कीट-पतंग हों, वहाँ भी कुछ अन्न रखना चाहिये । इस प्रकार उसमें धूल न लगे । जहाँ कीट-पतंग हो, वहाँ भी कुछ अन्न रखना चाहिये । इस प्रकार हमें समस्त प्राणियों पर दया दृष्टि रखते हुए उनकी प्राणरक्षा करनी चाहिये ।

स्मृतिकालीन समाज वर्ण के आधार पर था । वर्णों के आधार पर उनके कार्य जीवन शैली तथा व्यवहार था । समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया था ।

ब्रह्मामण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र ये चारों, वर्ण समाज में स्थापित थे । स्मृतिकार मनु ने चारों वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा है-

"*सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः।*
मुखबाहूरूपज्जानां पृथक् कर्माण्यक कल्पयत्।।
67 *//*"[6]

अत्यन्त तेजस्वी उस ब्रह्मदेव ने इस समस्त सृष्टि की रक्षा करने के लिये मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, भुजा से उत्पन्न क्षत्रिय जंघा से उत्पन्न वैश्व और चरणों से उत्पन्न शुद्र वर्ण के कर्मों का पृथक-पृथक निर्धारण किया । इन चारों वर्णों में ब्राह्मण को श्रेष्ठ माना गया है । क्योंकि वह सभी अवयवों में जो उत्तम अङ्ग होता है, तथा महाफलप्रद जो ज्योतिष्ठोमादियागानुष्ठान है, वे ही उनके अधिकारी होते हैं । जो वेदतत्वार्थवेता होते हैं, उनका खण्डन बौद्धादि नास्तिक नहीं कर सकते । अतःएव वे उनके भी श्रेष्ठ है ।

प्राचीन स्मृतिकारों ने समाज के निर्माण में नारी के योगदान का महत्त्व समझते हुए उसे समाज के सभी क्षेत्रों में उच्च स्थान दिया हुआ था । दूसरे की नारी के प्रति कोई भी सामाजिक कुदृष्टि न लाने पाये । अतः आचार शास्त्रीय दृष्टि से इस प्रकार समाज में व्यवस्था बनाई हुई थी ।

"*मातृवत् परदाराश्च परद्रव्याणि लोष्ठावत्।*"[7]

अर्थात् दूसरों की स्त्रियों को माता के समान देखें । नारी को वस्तुतः त्याग और क्षमा की साक्षात् मूर्ति माना गया है । नारी ही एक मात्र समाज की सच्ची निर्मात्री और परिवार की संचालिका है । नारी नर में अपने गुणों के कारण नरत्वके भावेरां को सदा जाग्रत करती रहती है । नारी के आकर्षण ने पुरुष को गृहस्थ की ओर आकर्षित किया है और नारी ने अपनी ममता से सन्तति की, स्नेह से पति और परिवार को भी अनुशासन में रखकर भावी समाज के निर्माण में एक रचनात्मक कार्य करती रही है ।

"*माता मातावही गुर्वी पितृमातृस्वसादयः।*
श्वश्रु पितामही ज्येष्ठा ज्ञातव्या गुरवः स्त्रियः।।" [8]

परिवार की सभी नारियों को प्राचीन भारतीय स्मृतिकारों ने अत्यन्त श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखा है । मानव जीवन को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने के उद्देश्य से युगद्रष्टा ऋषियों ने स्मृतियों तथा पुराणों में आचार-विचार चारित्र्य, भक्ष्याभक्ष्य, चितशुद्धि, संयमित जीवन के जो उपदेश दिये है, वे विश्वमानवता के लिए उनकी अनुपम देन कहे जा सकते हैं ।

भारतीय संस्कृति में वैयक्तिक कल्याण के साथ-साथ स्वकल्याण एवं पर-कल्याण का भी पूर्ण महत्त्व प्रतिपादित किया गया है । यहाँ सामाजिक आदर्शों के

[5] मनुस्मृति 3/12
[6] मनुस्मृति 1/67
[7] आपस्तक 10/11
[8] औशनस्मृति/28

मध्य दोनों प्रकार के कल्याणों को एक-दूसरेका पूरक सिद्ध किया गया है ।

वशिष्ठ स्मृति में आचार पर विशेष बल दिया है, उनका कथन है -

"*आचारः परमोधर्मः सर्वोषमिति निश्चयः।*
हीनाचार परीतात्मा प्रेत्य चेह न नश्यति।।"[9]
आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदा षड्गास्त्वखिलाः सज्ञयाः।
का प्रीतिमुत्पादयिंतु समर्थः अन्धस्य वारा इव दर्शनीयाः।।[10]

अर्थात् आचार से हीन व्यक्ति के लिए लोक भी नष्ट होता है एवं परलोक भी निषिद्ध होता है । अतः आचार ही सबसे बड़ा धर्म है । आचार रहित व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण योग तथा वेद वेदाड़्ग उसी प्रकार नहीं करते जिस प्रकार अन्धे के हृदय में सुंदरी भार्या । वशिष्ठ जी ने महंगा बेचने वालों का समाजद्रोही कहा है । वसिष्ठ जी का यह भी कहना है कि विद्वानों के भोगने योग्य पदार्थों को जिन राष्ट्रों में अविद्वान् लोग भोगते हैं उनमें अनाविष्ठ होती है । अथवा महान् भय होता है । इस प्रकार वशिष्ठ स्मृति में समाज का चित्रण दिखाई पड़ता है ।

प्राचीन ऋषि मुनियों के चिन्तन का प्रमुख केन्द्र मानव रहा है । व्यक्ति एवं समाज के कल्याण का सम्यक् विचार ऋषियों ने अपने दर्शन एवं चिन्तन में किया है । 'मनुर्भव' मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे', मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे', अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि वेदवचनों से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति के कल्याण समष्टि के कल्याण की भावना अन्तर्भूत है । मानव का भौतिक कल्याण आध्यात्मिक कल्याण पर आधारित है ।

विश्व शांति की दृष्टि से मानवतावाद आज की प्रमुख विचारधारा है किन्तु इसकी सम्पूर्ति भारतीय संस्कृति के जीवनादर्शों को अपना कर ही की जा सकती है । न केवल मानवकल्याण, अपितु सम्पूर्ण मानव जाति का भी कल्याण इसी में निहित है । मानवतावाद "कृष्वन्तों विश्वमार्यम्" का उद्घोष किया था, किन्तु खेद का विषय है कि भारतीय संस्कृति के वे आदर्श एवं संकल्प उचित कर्णधारों के अभाव में बीच में ही अटक कर रह गया । आज उनके पुनरूस्थान की परम आवश्यकता प्रतीत होती है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संस्कृति (रूपनारायण त्रिपाठी, रामदेव साहू)
2. मनुस्मृति (2/1)
3. याज्ञवल्क्य स्मृति (1/346)
4. मनुस्मृति (4/146, 148)
5. मनुस्मृति (3/12)
6. व्यास एवं दक्ष स्मृति में नारी धर्म (डॉॠ आरती झा)
7. मनुस्मृति (1/69)
8. आपस्तब स्मृति (10/11)
9. औषन स्मृति (28)
10. भारतीय संस्कृति (रूपनारायण त्रिपाठी, रामदेव साहू)
11. वशिष्ठ स्मृति (6/1)
12. भारतीय संस्कृति (रूपनारायण त्रिपाठी, रामदेव साहू)

9. वशिष्ठ 6/1

10. वसिष्ठ 6/7